LL.B. 1st Sem. Paper-3 Family Law –I (Hindu Law)

Question 1. हिन्दू विधि के स्त्रोत के रूप में श्रुति, स्मृति, एवं सदाचार (रूढि) के महत्व की व्याख्या कीजिए।

Answer . हिन्दू विधि के स्त्रोतों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) प्राचीन स्त्रोत,

1.श्रुति, 2. स्मृति 3. निबन्ध, 4. भाष्य , 5. प्रथा

(2) आधुनिक स्त्रोत

1. साम्या, न्याय तथा सद्विवेक, 2. न्यायिक निर्णय, 3. विधायन

हिन्दू विधि किस प्रकार अस्तित्व में आयी अर्थात् वर्तमान हिन्दू विधि को अस्त्वि में आने से पूर्व किन– किन प्रकियाओं से गुजरना पडा है। हिन्दू विधि अपने वर्तमान रूप में आने से पूर्व जिस– जिस अवस्था में थी, उन्हें हिन्दू विधि का उद्गम या स्त्रोत माना जा सकता है।

1. **श्रुति (Srutis) –** मनु के अनुसार श्रुति अर्थात् जो सुना गया है सिद्धान्तः हिन्दू विधि के सर्वोच्च तथा प्राथमिक स्त्रोत माने जाते हैं। श्रुति को दैवी वाणी या आकाशवाणी माना जाता है। श्रुति का अर्थ है जो सन्तों द्वारा सुना गया। श्रुतियों को चार वेदों, छः वेदांगों तथा अट्ठारह उपनिषदों में संग्रहित किया गया है। इसमें मुख्यतः धार्मिक रीतियों के अनुष्ठानों तथा सत्य ज्ञान प्राप्त करने या मोक्ष प्राप्त करने या मोक्ष प्राप्त करने के साधनों के बारे में वर्णन मिलता है।
2. **स्मृति (Smriti) –** स्मृति का अर्थ है जो कुछ स्मृत या याद है। स्मृतियों का आधार मुख्यतया वेद है। स्मृतियों के लेखक यह दावा नहीं करते कि स्मृतियॉ शब्दशः दैवी वाणी ही हैं परन्तु उनका कहना है कि प्रथागत रूप से सुने गये दैवी नियम को उन्होने संग्रहित किया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि स्मृतियों का उद्गम दैवी न होकर मानवीय है। स्मृतियों में मनु स्मृति सबसे अग्रणी है।
3. **सदाचार (रूढि) या प्रथा (Custom)-** प्रथाऍ ऐसे नियमों को कहते हैं जिन्हें किसी विशिष्ट परिवार या विशिष्ट व्यक्तियों के वर्ग में लम्बी अवधि के प्रयोग से विधि से बल प्राप्त हो गया हो। प्रिवी काउन्सिल के अनुसार प्रथा किसी

विशिष्ट परिवार या जिले में प्रचलित नियम हैं । जिन्हें लम्बी अवधि के प्रयोग के कारण कानून से बल प्राप्त हो गया है। प्रथा को वैध होने के लिए प्रथाएँ प्राचीन होनी चाहिए,निशिचित होनी चाहिए, युक्तियुक्त (उचित) होने चाहिये तथा विधि के सामान्य नियमों के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए।

Question 2. हिन्दू– विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत एक वैध विवाह की आवश्यक शर्तें क्या है? विस्तार से व्याख्या कीजिए।

Answer . हिन्दुओं के मध्य विवाह एक संस्कार है। विवाह के बारे में हिन्दुओं में यह कहा जाता है कि विवाह जन्म–जन्मान्तर का बन्धन है तथा जन्म से पूर्व तय हो जाते हैं जिन्हें जन्म के बाद मूर्त स्वरूप प्रदान किया जाता है या लागू किया जाता है। हिन्दू विवाह की वर्तमान आवश्यक शर्तों को समझने के लिए हमें हिन्दू विवाह अधिनियम,1955 के सम्बन्धित प्रावधानों का अवलोकन करना होगा। इस विषय में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 से पूर्व की स्थिति का अवलोकन भी समीचीन होगा।

हिन्दू विधि के पूर्व विवाह की स्थिति– धार्मिक हिन्दू विधि के अन्तर्गत एक वैध हिन्दू विवाह के लिए निम्न शर्तों का पूरा होना आवश्यक था–

1. पक्षकार वर तथा वधू एक ही जाति के होने चाहिए।
2. पक्षकार वर तथा वधू को सम्बन्धों या नातेदारी की प्रतिबन्धित श्रेणी से परे होना चाहिए अर्थात् यह आवश्यक था कि वर तथा वधू प्रतिबन्धित नातेदारियों की श्रेणी के अन्तर्गत न हों।
3. हिन्दू विवाह के सभी उचित समारोहों का पालन हुआ है अर्थात् हिन्दू विवाह के लिए आवश्यक सभी समारोह सम्पन्न हुए हों।

   प्राचीन हिन्दू धर्म में प्रतिलोम विवाह पर प्रतिबन्ध था अर्थात् निम्न जाति के पुरूष तथा उच्च जाति की महिला के मध्य विवाह पर प्रतिबन्ध था परन्तु अनुलोम विवाह की अनुमति थी अर्थात् उच्च जाति की महिला के मध्य विवाह पर प्रतिबन्ध था परन्तु अनुलोम विवाह की अनुमति थी अर्थात् उच्च जाति की पुरूष तथा निम्न जाति की स्त्री के मध्य विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं था।

   ज्योतिशाह बनाम **राजेश कुमार पाण्डेय, ए0 आई0 आर0 2000**

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत विवाह की आवश्यक शर्तें– अब हिन्दू विवाह के लिए वैधता हेतु हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत जाति या उपजातियों की एक रूपता, समानता आवश्यक नहीं है।

1. **एक पत्नी विवाह–** हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5 (1) के अनुसार एक वैध विवाह के लिए यह प्रथम आवश्यक शर्त है कि वर या वधू को जीवित पत्नी या पति पहले से न हो।

   लीला थामस बनाम **भारत संघ, ए0 आई0 आर0 2000 एस0 सी0 1650 के वाद**

2. **पक्षकारों की सहमति–** हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5 (ii) के अन्तर्गत वैध विवाह की द्वितीय शर्त प्रतिपादित की गई है।
   बालकृष्ण बनाम लोकिमा 1984

3. **विवाह की आयु –** हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5 (3) के अर्न्तगत विवाह की आयु निर्धारित कर दी गयी है।

   श्रीमती नौमी बनाम **नरत्तम,** (1963) तथा **मोहिन्दर कौर** बनाम **मेजर सिंह,** (1970)

4. **प्रतिबन्धित डिग्री के ऊपर विवाह होना चाहिए –** हिन्दू विवाह अधिनियम,1955 की धारा 5 (4) चौथी तथा पॉचवीं शर्त का प्रतिपादन करती है।

   श्रीमती शकुन्तला देवी बनाम **अमरनाथ, ए0 आई0 आर0 1982**
   बालू सामी बनाम **बालकृष्ण 1957**

<u>Question 3.</u> विवाह –विच्छेद क्या है? तथा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत विवाह विच्छेद के विभिन्न अधिकारों की विस्तार से विवेचना कीजिए।

<u>Answer</u> . हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में सन् 1976 में किये गये संशोधन के अनुसार यदि किसी पति तथा पत्नी के मध्य विवाह– विच्छेद की डिक्री पारित की गई है तब भी वे पुनः विवाह तभी कर सकते हैं जब –

(1) विवाह– विच्छेद की डिक्री के विरूद्ध अपील करने का अधिकार न हो।
(2) यदि अपील करने का अधिकार है तो अपील करने की समयावधि के अन्तर्गत अपील कर दी गई हो।
(3) यदि अपील की भी गई हो तो अपील खारिज कर दी गई हो।

यह स्थापित मत है कि यदि विवाह–विच्छेद के पश्चात भी धारा 15 के उल्लंघन में विवाह किया गया है तो वह विवाह शून्य होगा।

लीला गुप्ता बनाम लक्ष्मी नारायण (1978) के वाद में

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत विवाह विच्छेद के विभिन्न अधिकार–

1. **जारकर्म–** हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में सन् 1976 में किये गये संशोधन से पूर्व जारकर्म विवाह–विच्छेद का एक आधार था। जारकर्म का सामान्य अर्थ है कि किसी वैध विवाह की जीवित पत्नी के रहते हुए किसी अन्य की पत्नी के साथ अवैध सम्बन्ध रखना।

चन्द्रमोहिनी श्रीवास्तव बनाम **अविनाश प्रसाद** (1967)

श्रीमती आनन्दी देवी बनाम **राजाराम, AIR 1937**

2. **अभित्यजन तथा कुरता–** हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में सन् 1978 में किये गये संशोधन से पूर्व अभित्यजन तथा कुरता न्यायिक पृथक्करण के लिए आधार था। परन्तु 1978 में संशोधन द्वारा अभित्यजन तथा कुरता को विवाह– विच्छेद का भी आधार मान लिया गया।

जे श्यामला बनाम **पी0 सुन्दरम कुमार AIR 1991**

3. **विकृतचित्तता या उन्मत्तता–** वह व्यक्ति जो अपने कारोबार, कार्य व्यापार को समझने तथा चलाने में असमर्थ है या जो सामान्य आचारण करने असमर्थ है विकृतचित्त या उन्मत्त कहलायेगा।

राम रिषि बनाम **सुरेश कुमारी 1985**

किरन बाला अस्थाना बनाम **भैरों प्रसाद श्रीवास्तव 1982**

4. **कुष्ठ रोग–** हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में सन् 1976 में संशोधन के पश्चात् धारा 13 (1) (4) के अन्तर्गत कुष्ठ रोग के आधार पर विवाह–विच्छेद प्राप्त करने हेतु दो शर्ते साबित करनी आवश्यक हैं–

(1) कुष्ठ रोग, असाध्य हो। (2) कुष्ठ रोग उग्र रूप में हो।

पद्यराज बनाम **धनवथी**, **ए0आई0आर0 1972 एस0सी0 2219 : 1993**

5. **रतिज रोग–** रतिज रोग का अर्थ संभोग के फलस्वरूप संचारी रोग है। सन् 1976 के संशोधन से पूर्व रजित रोग तीन वर्ष पुराना आवश्यक था। अब तीन वर्ष पुरानी शब्दावली को हटा दिया गया है।

6. **संपरिवर्तन–** हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1) (2) के अनुसार यदि प्रतिपक्षी संपरिवर्तन के फलस्वरूप हिन्दू नहीं रहा है तो याचिकाकार विवाह– विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकता है।
7. **प्रवज्या ग्रहण करना या संन्यास ग्रहण करना या संसार त्यागना–** हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1) (6) के अन्तर्गत यदि एक पक्ष ने संन्यास ग्रहण कर लिया है तो वह विवाह– विच्छेद की डिक्री का आधार बन सकता है।
8. **मृत्यु की उपधारणा–** विश्व की अनेक वैवाहिक विधियॉ मृत्यु की उपधारण को विवाह– विच्छेद का आधार मानती हैं। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1) मृत्यु की उपधारणा को विवाह– विच्छेद का आधार मानती है।

Question 4. शून्यकरणीय विवाह से आप क्या समझते है? हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के प्रावधानों के अनुसार स्पष्ट कीजिए।

Answer . शून्यकरणीय विवाह– शून्यकरणीय विवाह एक विधिमान्य विवाह है और जब तक उसके शून्यकरणीय विवाह होने की डिक्री पारित न हो जाए, वह वैध तथा मान्य विवाह रहता है। शून्यकरणीय विवाह पक्षकारों में से किसी एक की याचिका द्वारा ही निर्धारित हो सकता है।

शून्यकरणीय विवाह के आधार – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 शून्यकरणीय विवाह के चार आधार निर्धारित करती है। ये आधार उन विवाहों पर भी लागू होंगे जो इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व सम्पन्न हों या अधिनियम पारित होने के पश्चात् सम्पन्न हों।

1. प्रत्यर्थी की नपुंसकता के कारण विवाहोत्तर सम्भोग न होना।
2. किसी पक्षकार (प्रत्यर्थी) का विवाह के समय
3. प्रत्यर्थी का विवाह के समय गर्भवती होना।
4. अर्जीदाता (याचिका करने वाले) पक्षकार की सम्मति बल प्रयोग या कर्मकाण्ड की प्रकृति या प्रत्यर्थी से सम्बधित किसी तात्विक तथ्य या परिस्थिति के बारे में कपट द्वारा प्राप्त की गई थी।
    1. **प्रत्यर्थी का विवाह के समय गर्भवती होना– सुरजीत** बनाम **राजकुमार 1967** के वाद में पंजाब उच्च न्यायालय ने कहा कि शून्यकरणीय विवाह की शर्त पत्नी का विवाह के समय गर्भवती होना है।
        1. प्रतिपक्षी विवाह के समय गर्भवती थी।
        2. यह कि वह याचिकाकार से नहीं बल्कि अन्य व्यक्ति से गर्भवती थी।

3. याचिकाकार को इस तथ्य का ज्ञान विवाह के समय नहीं था।
4. यह ज्ञात होने के पश्चात् कि पत्नी गर्भवती थी, याचिकाकार ने स्वेच्छा से मैथुन नहीं किया है।
5. **कपट तथा बल** – याचिकाकार की सहमति कपट या बल द्वारा प्राप्त की गई है तो इसके लिए विवाह को शून्यकरणीय घोषित कराने हेतु निम्न आधारों का सहारा लिया जा सकता है–
   1. याचिकाकार की अनुमति बल या कपट द्वारा प्राप्त की गई थी।
   2. कपट का पता लगने पर या बल प्रयोग समाप्त होने के एक वर्ष के अन्दर याचिका दायर कर दी गई है।
   3. याचिकाकार कपट का पता लगने पर या बल प्रयोग सम्पन्न होने के पश्चात् अपनी पत्नी के साथ इच्छा से पति की तरह नहीं रहा है या रह रही है।

      सन् 1976 में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में किये गयें संशोधन से पूर्व निम्न तथ्य तथा परिस्थितियों कपट का आधार मानी जाती थीं–

      1. रोग को छिपाना **2.** धर्म या जाति को छिपाना **3.** शीलभ्रष्टता को छिपाना **4.** अधर्मजता को छिपाना **5.** प्रतिपक्षी की पहचान के बारे में कपट सदैव शून्यकरणीय विवाह का आधार माना जाता रहा है।

परमिन्दर चरण सिंह बनाम हरजीत कौर, ए0 आई0 आर0 2003

<u>Question 5.</u> हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण – पोषण अधिनियम– 1956 के अन्तर्गत वैध दत्तक ग्रहण की आवश्यक शर्ते क्या है? व्याख्या कीजिए।

<u>Answer</u> . हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण–पोषण अधिनियम–1956 के अन्तर्गत पत्नी, विधवा पुत्र–वधू, बच्चे तथा वृद्ध माता–पिता को भरण पोषण सम्बन्धी निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं–

1. पत्नी– अधिनियम की धारा 18 के अधीन दो प्रकार के अधिकार दिये गये हैं–
   1. भरण –पोषण
   2. पृथक् निवास का अधिकार

   हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण–पोषण अधिनियम–1956 की धारा 29 के अन्तर्गत समाप्त कर दिया गया है।

बरूम्मा बनाम सिधप्पा जीवाप्पा, ए0 आई0 आर0 2003

रघुवीर सिंह बनाम गुलाब सिंह, ए0 आई0 आर0 1998

चॉद धवन बनाम जवाहर लाल धवन 3 एस0 सी0 सी0 1993

विधवा पुत्र–वधू का भरण–पोषण –

1. कोई हिन्दू पत्नी, चाहे वह इस अधिनियम के आरम्भ से पूर्व या बाद में विवाहित हो, अपने पति की मृत्यु के बाद अपने श्वसुर द्वारा भरण– पोषण के लिए हकदार होगी, (धारा 19)
2. यदि श्वसुर के अपने कब्जे में किसी समांशित सम्पत्ति से जिसमें से पुत्र–वधू को कोई अशं अभिप्राप्त नहीं हुआ है, श्वसुर के लिए करना साध्य नहीं है, तो उपधारा (1) के अधीन किसी आभार का अनुपालन नहीं कराया जा सकेगा और ऐसा कोई आभार पुत्र–वधू के पुनर्विवाह पर न रहेगा।

बालकों और वृद्ध माता–पिता का भरण –पोषण–

1. इस धारा 20 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए कोई हिन्दू अपने जीवन–काल के अभ्यन्तर अपने औरस या जारज बालकों और वृद्ध माता–पिता का भरण–पोषण करने के लिए बाध्य है।
2. जब तक कि औरस या जारज बालक अवयस्क रहे, वह अपने माता या पिता से भरण–पोषण करने के लिए दावा कर सकेगा।

आनन्दी डी जाधव बनाम निर्मल चन्द्र कौर, AIR 2000

एस0 जगजीत सिंह भाटिया बनाम बलबीर सिंह भटिया AIR 2003

<u>Question 6.</u> वसीयत संरक्षक कौन है? उन्हें किसके द्वारा नियुक्ति किया जा सकता है? वसीयत संरक्षक की शक्तियों की व्याख्या कीजिए।

<u>Answer</u> . अवयस्क व्यक्ति अपने लिए संविदा करने का अधिकार या क्षमता नहीं रखता । परन्तु अवयस्क की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संविदा की अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता । इस प्रकार विधि यह अनुमति देती है कि अवयस्क के लिए संविदा या अन्य विधिक कार्य उसके संरक्षक के माध्यम से सम्पन्न किये जाते है। हिन्दू अवयस्कता तथा संरक्षकता अधिनियम, 1956 में वसीयती संरक्षक की नियुक्ति का अधिकार माता तथा पिता दोनों को धारा 9 द्वारा प्रदान किया गया है।

हिन्दू अवयस्कता तथा संरक्षकता अधिनियम, 1956 पारित होने से पूर्व ऐसा प्रतीत होता है कि संरक्षक की नियुक्त वसीयत द्वारा या अन्य किसी वसीयती सम्पत्ति अन्तरण के दस्तावेज द्वारा की जा सकती थी, परन्तु अब हिन्दू अवयस्कता तथा संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 9 के अन्तर्गत वसीयती संरक्षक की नियुक्ति सिर्फ वसीयत द्वारा ही की जा सकती है।

वसीयत संरक्षक किसे नियुक्त किया जा सकता है?

1. एक हिन्दू पिता अवयस्क के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में कार्य करने की क्षमता रखता है तथा एक हिन्दू पिता को (यदि वह सन्यास या वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर नैसर्गिक संरक्षक की क्षमता नहीं रखे हैं) अपने औरस अवयस्क सन्तान के लिए अवयस्क की देखभाल के लिए वसीयत द्वारा संरक्षक नियुक्त करने की शक्ति है। यह संरक्षक अवयस्क के शरीर (भरण–पोषण) तथा सम्पत्ति दोनो के लिए नियुक्त हो सकता है।
2. यदि पिता ने अपनी वसीयत में संरक्षक की नियुक्ति तो की है, परन्तु वह यदि अवयस्क की माता के पहले मर जाता है तो वसीयत में नियुक्त संरक्षक वसीयती एव नैसर्गिक संरक्षक के रूप में कार्य इसलिए नहीं करेगा क्योंकि माता के रूप में नैसर्गिक संरक्षक जीवित है। यदि माता बिना किसी वसीयती संरक्षक को नियुक्त किये मर जाती है तब उस परिस्थिति में पिता द्वारा अपनी वसीयत में नियुक्त वसीयती संरक्षक नैसर्गिक संरक्षक के रूप में कार्य करेगा।

हिन्दू अवयस्कता तथा संरक्षक अधिनियम, 1956 की धारा 6 के अनुसार एक अधर्मज सन्तान के सम्बन्ध में उसकी माता ही नैसर्गिक संरक्षक होगी तथा वह वसीयत द्वारा अपने अर्धमज सन्तान का संरक्षक पिता के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर पिता को नैसर्गिक संरक्षक होने से वंचित कर सकती है।

वसीयती संरक्षक की शक्तियॉ– एक वसीयत द्वारा नियुक्त वसीयती संरक्षक को वसीयत की शर्तों की सीमा में उसकी माता ही नैसर्गिक संरक्षक की सभी शक्तियॉ प्राप्त हैं । इसे नैसर्गिक संरक्षक के सभी अधिकार तथा कर्तव्य का निर्वाह करना होगा। एक वसीयती संरक्षक का अवयस्क के भरण–पोषण का दायित्व व्यक्तिगत नहीं होता परन्तु यह दायित्व अवयस्क की सम्पत्तियों तक सीमित रहता है।

लड़कियों के मामलें में वसीयत द्वारा नियुक्त संरक्षक की नियुक्त संरक्षक की नियुक्ति उस लड़की के विवाह के पश्चात् समाप्त हो जाती है तथा पति उस लड़की के विवाह के पश्चात् नैसर्गिक संरक्षक का स्थान ग्रहण कर लेता है।

Question 7. हिन्दू विधि के प्रमुख शाखाओं के रूप में मिताक्षरा एवं दायभाग की व्याख्या कीजिए। मिताक्षरा एवं दायभाग शाखा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Answer . मिताक्षरा–

1- संयुक्त सम्पत्ति के विषय में मिताक्षरा शाखा में पुत्र का पिता की पैतृक सम्पत्ति में जन्म से ही अधिकार हो जाता है। पुत्र पिता के साथ सहस्वामी होता है। सम्पत्ति के हस्तांतरण करने का पिता का अधिकार उसके पुत्र के अधिकार के कारण नियन्त्रित होता है। एक के मरने के बाद संयुक्त परिवार का दूसरा सदस्य उसके अंश को उत्तरजीविता से प्राप्त करता है।

2- हस्तान्तरण के सम्बन्ध में संयुक्त परिवार के सदस्य सम्पत्ति में अपने अशं को तब तक हस्तान्तरित नहीं कर सकते जब तक वह अविभक्त है।

3- दाय के सम्बन्ध में–दाय का सिद्धान्त रक्त पर आधारित है।

4- फैक्टम वैलेट का सिद्धान्त मिताक्षरा पद्धति में सीमित रूप में माना गया है।

5- सजातियों की अपेक्षा निकट सम्बन्धी को उत्तराधिकार के मामले में अधिक महत्व दिया जाता है।

6- मिताक्षरा एक टीका व एक परम्परानिष्ठ पद्धति है।

दायभाग–

1. दायभाग शाखा में पुत्र का पिता की सम्पत्ति में अधिकार पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न होता है। पिता का अपने जीवन–काल में सम्पत्ति पर परम अधिकार होता है, पुत्र का उससे कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति का अंश उसकी मृत्यु पर दाय के रूप में उसके दायादों को प्राप्त होता है।
2. संयुक्त परिवार का कोई भी सदस्य अविभक्त सम्पत्ति में अपने अंश हस्तान्तरित कर सकता है।
3. दाय पारलौकिक लाभ प्राप्त कराने के सिद्धान्त पर आधारित है अर्थात् दाय वे प्राप्त कर सकते हैं जो मृतक को पिंडदान दे सकें।
4. फैक्टम वैलेट का सिद्धान्त दायभाग में पूर्ण रूप से माना गया है।
5. दायभाग समस्त संहिता का एक सारसंग्रह है।
6. दायभाग संशोधित पद्धति है।

Question 8. विभाजन क्या होता है? विभाजन के विभिन्नतरीकों को बताते हुए इसका आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए कि कब एवं किन परिस्थितियों में एक बाहरी व्यक्ति विभाजन का दावा कर सकता है?

Answer : प्रत्येक सहदायिक को संयुक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति के विभाजन का अधिकार है। विभाजन संयुक्त संस्थिति को विभक्त करके

वैयक्तिक कुटुम्बों को जन्म देता है। उदाहरणार्थ, एक संयुक्त कुटुम्ब के सदस्य पिता अ और उसके दो पुत्र ब और स हैं विभाजन होने पर अ,ब और स तीनों का पृथक्–पृथक् कुटुम्ब सृजित होगा।

दायभाग और मिताक्षरा शाखाओं में विभाजन का अर्थ किंचित भिन्न है। मिताक्षरा में न केवल स्वाधीनम् की एकता होती है बल्कि स्वामित्व की संयुक्तता थी। अतः वहॉ पर विभाजन का अर्थ है, संयुक्त स्वामित्व का विभाजन अर्थात् संयुक्त संस्थित का पृथक्करण और तत्पश्चात सम्पत्ति का बंटवारा। इस भॉति मिताक्षरा शाखा में विभाजन का अर्थ हैं–

1. संयुक्त संस्थिति का पृथक्करण और
2. संयुक्त संपत्ति का बंटवारा ।

दूसरी ओर, दायभाग शाखा के अन्तर्गत सहदायिकों के हित पृथक–पृथक है वहॉ स्वामित्व की संयुक्त नहीं हैं, अतः वहॉ विभाजन का अर्थ है, संयुक्त सम्पत्ति का बंटवारा।

विभाजन की विषय –वस्तु

सामान्य नियम यह है कि संयुक्त कुटुम्ब की समस्त सम्पत्ति विभाजन की विषय–वस्तु है और पृथक् सम्पत्ति विभाजन की विषय–वस्तु नहीं है। विभाजन के लिए संयुक्त संपत्ति का होना अनिवार्य है। पर जहॉ संयुक्त संपत्ति अविवादित है वहॉ विभाजन पर प्रति सहदायिक को समान भाग मिलेगा। संयुक्त कुटुम्ब की कुछ सम्पत्ति ऐसी होती है, जो अपने स्वरूप या प्रकृति के कारण विभक्त नहीं हो सकती है।

विभाजन का ढंग

हिन्दू विधि विभाजन का कोई निश्चित ढंग निर्धारित नहीं करती है। जिस ढंग से विभाजन की इच्छा की घोषणा हो जाये उसी ढंग द्वारा विभाजन हो जाता है।

1. **वाद द्वारा विभाजन –**
2. **करार द्वारा विभाजन–**
3. **मौखिक विभाजन–**
4. **एकपक्षीय घोषणा द्वारा विभाजन–**
5. **पंच–फैसले द्वारा विभाजन–**
6. **आचरण द्वारा विभाजन–**
7. **विभाजन के दस्तावेज का पंजीकरण–**
8. **स्वयं–कृत विभाजन–**

Question 9. दान क्या है? दान के आवश्यक तत्वों का वर्णन कीजिए। कौन–सी सम्पत्ति दान में दी जा सकती है? दान कब पूर्ण होता है?

Answer :- दान की परिभाषा– सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 122 में दान की परिभाषा इस भॉति दी गई है–

दान, किसी वर्तमान जंगम या स्थावर सम्पत्ति का वह अन्तरण है, जो एक व्यक्ति द्वारा, जो दाता कहलाता है, दूसरे व्यक्ति को (जो आदाता कहलाता है) और स्वेच्छापूर्वक बिना प्रतिफल के किया गया हो और आदाता द्वारा या उसकी ओर से प्रतिग्रहीत किया हो। ऐसा प्रतिग्रहण दाता के जीवन काल में और जब त कवह देने के लिए समर्थ हो करना होगा।

यदि प्रतिग्रहण करने से पूर्व आदाता की मृत्यु हो जाती है तो दान शून्य हो जाता है। यदि मृत्यु से पूर्व किसी हिन्दू ने अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दी है तो मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र और पत्नी को उस सम्पत्ति में कोई भी हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार नहीं है।

मिताक्षरा ने दान की परिभाषा इस भॉति की है, दान है सम्पत्ति में अपने स्वामित्व का त्यजन। आदाता का इस सम्पत्ति में स्वामित्व उसके द्वारा दान को स्वीकार करने पर, सृजित होता है अन्यथा दान पूर्ण नहीं होगा।

हिन्दू विधि के अन्तर्गत दान के लिए कोई भी प्रारूपिता निर्धारित नहीं की गई थी, आदाता द्वारा दानग्रहण करते हुए दान पूर्ण माना जाता था, अन्य किसी औपचारिकता की आवश्यकता नहीं थी। यदि सम्पत्ति की प्रकृति या स्वाभाव के कारण उसका वास्तविक स्वाधीनम् ग्रहण करना सम्भव नहीं है तो दाता, द्वारा उसे पूर्ण करने के लिए जो भी कुछ करना आवश्यक हो, करने पर दान पूर्ण माना जाता है। हिन्दू विधि में रजिस्ट्रीकरण का नियम नहीं था और न ही रजिस्ट्री दान को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त थी। परन्तु अब हिन्दू विधि के ये नियम उन्मूलित हो चुके हैं और सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित प्रारूपिता का पालन करना अनिवार्य है। सम्पत्ति अनतरण अधिनियम की धारा123 के अन्तर्गत प्रारूपित का उपबन्ध इस भॉति है।

स्थावर सम्पत्ति के दान के प्रयोजन के लिए वह अन्तरण दाता द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित और कम से कम दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा करना होगा।

ज्ंगम सम्पत्ति के दान के प्रयोजन के लिए अन्तरण या तो यथापूर्वोक्त प्रकार से हस्ताक्षरित रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा या परिदान द्वारा किया जा सकेगा।

ऐसा परिदान उसी प्रकार से किया जा सकेगा जैसे क्रय किया हुआ माल परिदत्त किया जाता है।

सम्पत्ति– अन्तरण अधिनियम के अन्तर्गत हिन्दू विधि का प्रावधान कि दान स्वीकृत होना आवश्यक है, रदद नहीं होता हैं। अतः दान की आदात द्वारा स्वीकृति अब भी आवश्यक है। बिना आदाता की स्वीकृत के दान रजिस्ट्रीकृत होने पर भी मान्य नहीं होगा, परन्तु सम्पत्ति या स्वाधीनम ग्रहण करना अब आवश्यक नहीं है।

कुडुतुम्मा बनाम नरसिम्हा चारयुल्लू,

पुगालिया वेटटोम्माल एवं एक अन्य बनाम वेटटोर गाउन्डन

तारा सबुआनी बनाम रघुनाथ

<u>Question 10.</u> वसीयत क्या है? वसीयत करने के लिए कौन सक्षम है और कौन– कौन सी सम्पत्तियॉ इच्छा पत्र द्वारा उत्तरदान की जा सकती है? क्या अजात बालक को उत्तरदान किया जा सकता है?

Answer:- वसीयत का अर्थान्वयन – सूत्र " अमान्य से मान्य करना अच्छा है" लागू–साधारणतया किसी वसीयत के अर्थान्वयन का नियम यह है कि किसी वसीयत को उसकी सम्पूर्णता में पढ़ा जाना चाहिये तथा प्रयास यह किया जाना चाहिये कि उसका कोई भी भाग छुटने न पाये अथवा अनावश्यक न हो। अन्य शब्दों में यदि किसी वसीयत में कोई प्रत्यक्ष असंगतता हो तो उसका समाधान करना न्यायालय का कर्तव्य होता है।

यदि किसी दस्तावेज के दो अर्थान्वयन ग्राहय हो तो उनमें से एक उसमें सभी खण्डों को प्रभावी बनायेगा जबकि दूसरा अर्थान्वयन एक अथवा उनमें से एक से अधिक को निरर्थक करेगा तो ऐसी दशा में पूर्ववर्ती को ही सूत्र " अमान्य से मान्य करना अच्छा है" में अभिव्यक्त सिद्धान्त पर अंगीकृत किया जाना चाहिये।

जहॉ पूर्वतर खण्ड तथा पश्चात्वर्ती खण्डों में विरोधाभास हो तथा उन सभी को प्रभावी कर पाना सम्भव न हो, तो अर्थान्वयन का नियम सुस्थापित है कि पूर्वतर खण्डों पर अभिभावी होगा, न कि विपर्यय से ।

जहॉ वसीयत के अधीन, वसीयतकर्ता ने सम्पत्ति में अपना आत्यन्तिक हित अपनी पत्नी के पक्ष में वसीयत कर दिया हो तो कोई पश्चात्वर्ती वसीयत जो प्रथम वसीयत के प्रतिकूल हो, अवैध होगी।

जहॉ वसीयतकर्ता ने अपनी विधवा को अपनी सम्पत्ति मे सीमित अधिकार प्रदान किया हो तो वसीयतकर्ता उसी वसीयत में अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति वसीयत करने के लिये स्वतंत्र होता है।

ऐई अम्माल बनाम सुब्रमनिया असारी एवं एक अन्य

वेनूगोपाल पिल्लई बनाम टी0 अम्मल